

## युग-युग में उभरते भारतीय महिला चित्रकारों के चित्र

-डा. अर्चना जोशी, व्याख्याता  
डाइंग एवं पेंटिंग विभाग  
राजकीय महाविद्यालय राजस्थान

### सारांश

प्रस्तुत लेख विभिन्न कालखंडों में कलाओं में नारी की प्रमुख भूमिकाओं व इनके योगदान को दर्शाता है। वैदिक काल से आधुनिक काल तक अनेक नारी कलाकार हुई हैं जिन्होंने भारतीय कला व विशेषरूप से चित्रकला के विपुल भंडार को भरने में योगदान दिया है। ज्ञात इतिहास में वैदिक काल की मंत्र रचना और गाने वाली ऋषिकाएं, उत्तर वैदिक काल में राजकुमारी उषा को उसकी कल्पना के राजकुमार के चित्र उकेर कर दिखाने वाली चित्रलेखा, रामायण काल की चित्रकार उर्मिला, गीत गोविंद चित्रमाल की रचनाकार मानकू, मुगल काल की चित्रकार साहिब बानो, 19वीं सदी की कांगड़ा शैली की चित्रकार पारो आदि अनेक महिलाएं इसकी साक्षी हैं। इसके अतिरिक्त तब से आधुनिक काल तक अनेक नारी चित्रकार हुई हैं जिन्होंने भारतीय चित्रकला में योगदान दिया है। यद्यपि कला की धारा में नारी चित्रकारों का योगदान अनवरत रहा है परंतु नारी की सामाजिक स्थिति में युगानुसार अंतर आता रहा है और इतिहास उसकी सामाज में निम्न- उच्च स्थितियों के अनुसार ही उसके योगदान को अंकित करता रहा है परंतु प्राचीन, मध्य व समसामयिक काल में नारी द्वारा चित्रकर्म में दिया गया योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता है।

**Key words**— विभिन्न युग, चित्रण, महिला चित्रकार

नारी व कला जैसे पर्यायवाची शब्द हैं। विभिन्न कलाओं में नारी की प्रमुख भूमिका और उसका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ललित कलाओं से उसका निकट सम्बन्ध सहज स्वाभाविक है। पीड़ा सहकर भी माँ बनने के बाद नारी को एक आत्मिक सुख का अनुभव होता है क्योंकि वह माँ का सृजन है और शिशु उसकी सृजनात्मक कृति। आदि प्रस्तर युग से लेकर आज तक कोई कालखंड ऐसा नहीं मिलेगा जब नारी ने अपनी कलाप्रियता और सृजन क्षमता का परिचय नहीं दिया हो पित्थरों, हड्डियों, पंखों, कोड़ियों के आभूषण, घास-फूस, मिट्टी की कलाकृतियां, भित्ति चित्र और हर युग में रचे गए लोकगीत और उनकी धुनों पर थिरकते पांवों की झुनझुन इनकी कलाओं की कहानी कहते हैं।

ज्ञात इतिहास में वैदिक काल की मंत्र रचने और गाने वाली ऋषिकाएं, उत्तर वैदिक काल में राजकुमारी उषा को उसकी कल्पना के राजकुमारों के चित्र उकेरकर दिखाने वाली चित्रलेखा, रामायण काल की चित्रकार उर्मिला, नृत्य कला में पारंगत महाभारत काल की उत्तरा, कुशल वीणा वादिका आम्रपाली, संगीत विशेषज्ञा माधवी, अभिनय में पारंगत अवन्ति सुंदरी, शांतला, वसंत सेना, वासवी, रूपणिका आदि, बौद्ध और जैन काल की चित्रकर्णियां अनुपमा और रंगलदेवी, गीत गोविन्द चित्रमाला की रचनाकार मनकू, मुगल काल की चित्रकार साहिबा बानो, 19वीं सदी की कांगड़ा शैली की चित्रकार पारो आदि अनेक महिलाएं इसकी मूर्त्तिमान साक्षी हैं।

इसके अतिरिक्त आधुनिक काल तक अनेक नारी चित्रकर्मियां हुई हैं जिन्होंने भारतीय चित्रकला के विपुल भंडार को भरने में योगदान दिया है। सदियों से नारी चित्रणकर्म की अपनी विशिष्ट परिपाटी को निभाती आई है। नारी के गूढ़ मन को आज तक कोई नहीं पढ़ सका है परन्तु नारी ने अपने भावों को जब-तब अवसर मिला, जहां-तहां लिखा, उकेरा, सृजित किया है। इस प्रकार चित्रण नारी के व्यक्तित्व से सन्निकट जुड़ा एक पहलू है।

यद्यपि कला की धारा में नारी चित्रकारों का योगदान अनवरत रहा है परन्तु युगानुसारनारी की सामाजिक स्थिति में अंतर आता रहा है और इतिहास उसकी सामाजिक निम्न-उच्च स्थितियों के अनुसार ही उसके योगदान को अंकित करता रहा है। नारी ने हमारे प्राचीन संस्कारों, संस्कृति और परम्पराओं को सजीव और समसामयिक बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इनमें नारी द्वारा चित्रण कर्म की परम्परा आदिम युग से समसामयिक कला तक लगातार चली आ रही है।

तथ्यतः यह कहा जा सकता है कि वैदिक काल से आधुनिक काल तक की कला यात्रा में नारी पुरुषों के समान अनवरत आगे बढ़ी है वह इस यात्रा में थकी नहीं और नहीं कहीं पीछे को छुटी हालांकि दृष्टि से कहीं-कहीं ओझल अवश्य हुई प्रतीत होती है जहां तक लोक कला का प्रश्न है इसका तो सिंचन ही महिला ने किया है इस दृष्टि से तो समाज की प्रत्येक महिला चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित न्यूनाधिक मात्रा में एक चित्रकार है और इस क्षेत्र में उसने पुरुषों को बहुत पीछे छोड़ दिया है ।

वैदिक युग में पितृसत्तात्मक संगठन होने पर भी समाज में महिलाओं की महान प्रतिष्ठा थी । ऐसा कोई प्रमाण ऋग्वेद में उपलब्ध नहीं होता जो यह प्रकट करे कि में स्त्रियों की स्थिति पुरुषों की अपेक्षा हेय थी तथा वह पुरुषों की उपाश्रित और अधीनस्थ होती थी। बौद्धिक तथा आध्यात्मिक और सामाजिक जीवन में स्त्रियों को वही प्रतिष्ठा प्राप्त थी जो पुरुषों को। धार्मिक कृत्यों, सामाजिक उत्सवों में, समारोह आदि में वह पुरुषों के साथ समान आसन ग्रहण करती थी ।पत्नी के रूप में स्त्रियां घर की समृद्धि होती थी ।ग्रहणी गृह स्वामिनी सहधर्मिणी जैसे शब्द उनके पारिवारिक प्रभाव और महत्व का परिचय देते थे। पुत्र और कन्या ऋग्वेद समाज में समान रूप से समाहत होते थे उस युग में कन्या का जन्म इतना चिंताजनक न था जितना कि कलांतर में हो गया। कन्याओं की अवहेलना नहीं की जाती थी। पुत्र की भांति कन्या का भी उपनयन संस्कार होता था। अध्ययन काल में उसे ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता था। कन्याओं की अवहेलना नहीं की जाती थी। पुत्र की भांति कन्या का भी उपनयन संस्कार होता था। अध्ययन काल में उसे ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता था। कन्याओं को उन समस्त कार्यों में दक्ष होना पड़ता था जिनकी गृहस्थ जीवन में आवश्यकता होती थी। अन्य कार्यों के अतिरिक्त कन्याओं को ललित कलाओं की शिक्षा दी जाती थी। स्त्रियां ऊंची से ऊंची शिक्षा प्राप्त कर सकती थीं। ऋग्वेद में अनेक विदुषी स्त्रियों का विवरण प्राप्त होता है। विश्वांवरा, घोषा, अपाला, लोपामुद्रा, सिकता, निवावरी, आदि विदुषी स्त्रियों ने ऋषिकाओं का प्रतिष्ठित पद प्राप्त किया था। ऋग्वेद में ऋषियों द्वारा हवन के समय प्रतीक रूप में चित्र बनाये जाने का उल्लेख है। स्त्रियों का चित्रण कर्म में पारंगत होने का यह स्पष्ट संकेत है।

वैदिक काल के बाद का समय-विस्तार बहुत लम्बा है। महामहोपाध्याय काणे के मतानुसार यह ईसा के 800 पूर्व से लेकर ई. सन् 200 तक अर्थात् लगभग एक हजार साल लम्बे क्षितिज पर फैला हुआ है। इस काल में स्त्रियों की स्थिति के साथ चित्रकलाओं से उनके सम्बन्धों में महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखायी देते हैं जिसका ज्ञान तत्कालीन साहित्य से होता है।

राजकुल के राजकुमारों के साथ विशेषकर स्त्रियों को संगीत, नृत्य, चित्रकला तथा अन्य ललित कलाओं का अध्ययन कराया जाता था। स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार था। बालक वालिकार्यों साथ साथ पढ़ते थे। आत्रेय लवकुश के साथ अम्बा शेखावत्य अध्ययन करती थी। इससे प्रतीत होता है कि सहशिक्षा की प्रथा प्रचलित थी। राजवंशी और धन सम्पन्न परिवारों में

कन्याओं की शिक्षा के लिए घर पर ही गुरु नियुक्त किये जाते थे। उन्हें वेदों और शास्त्रों के अतिरिक्त संगीत, नृत्य व ललित कलाओं की शिक्षा दी जाती थी।

राज परिवार और धन सम्पन्न व्यक्ति अपने बालक बालिकाओं की शिक्षा के लिए प्रसिद्ध आचार्यों को रखते थे।

रामायण, महाभारत, बौद्ध तथा जैन साहित्य तथा पुराणों में चित्रकला विषयक सामग्री का व्यापक भण्डार भरा पड़ा है। प्राचीन राजवंशों के राज्यों में सरस्वती भवन, चित्रशालायें और नाट्यशालायें संरक्षित होती थीं। राजदरबारों में अन्तः पुरों में तथा कर्मचारियों में चित्रकला के लिए निष्ठा पायी जाती थी। स्त्री व पुरुष दोनों ही समान रूप से चित्रण करते थे।

रामायण के समय समाज कला के प्रति बड़ा निष्ठावान था। बालकाण्ड के छठे सर्ग में महामुनि वाल्मीकि ने अयोध्यावासियों का जो परिचय दिया है उससे विदित होता है कि वे लोग कलाविद् और सौन्दर्य प्रेमी थे। सौन्दर्य कला प्रसाधनों के संबन्ध में स्थान-स्थान पर महामुनि ने केश सज्जा, अंगराग, चित्रविधान, वस्तुओं का व्यवहार, स्त्रियों के कपोलों पर पत्रावली का अंकन, राज-प्रसादों, गृहों, रथों तथा पशुओं की सज्जा आदि की जिस कला-पूर्ण रचना की विशेष चर्चा की है इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समय में समाज की कला तथा सौन्दर्य के प्रति हार्दिक अभिरुचि थी तथा महिलायें भी कला क्षेत्र में सक्रिय थीं। कैकेयी के चित्र सुशोभित राजप्रासाद के वर्णन से उसकी कलात्मक अभिरुचि का सहज ही परिचय मिल जाता है।

महाकाव्य युगीन संस्कृति में स्त्रियों की शिक्षा के अन्तर्गत संगीत, नृत्य, चित्रकला एवं अन्य ललित कलाओं के विषयों का विशेष रूप से अध्ययन कराये जाने का उल्लेख मिलता है। युधिष्ठिर की सेविकायें चौंसठ कलाओं में निपुण थीं। रामायण में उर्मिला का उत्तम चित्रकार होने का उल्लेख किया गया है। महाभारत में उषा अनिरुद्ध के प्रणय प्रसंग में उषा की सखी चित्रलेखा का स्मृति चित्रण में निपुण होना बताया गया है। अस्त्र-शस्त्रों से जिसकी प्राण रक्षा नहीं की जा सकती उसकी चित्रलेखा नाम की चित्रकर्त्री सखी जो कि अन्य कई विधाओं में पारंगत थी, अपने चित्रण कर्म द्वारा प्राण रक्षा करती है। महाभारत के अतिरिक्त विष्णु पुराण, हरिवंश पुराण आदि में विशेष रूप से उल्लिखित इस कथा प्रसंग से आश्चर्यजनक रूप में चित्रलेखा का अपने चित्रण कौशल में पारंगत होना सिद्ध होता है।

इस काल के बाद साहित्य के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति होती रही। तत्कालीन साहित्य के अनेक विवरणों से स्पष्ट होता है कि मौर्य व मुप्त युग एवं उसके निकटवर्ती काल में नृत्य, संगीत आदि की भाँति ही चित्रकारी में भी स्त्रियाँ पुरुषों की तरह भाग लेती थीं। इस समय की प्रसिद्ध साहित्यिक रचनायें अर्थशास्त्र (कौटिल्य), नाट्यशास्त्र (भरत), कामसूत्र (वात्स्यायन), अभिज्ञानशाकुन्तलम् (कालिदास), मेघदूत व मालविकाग्निमित्रम् (कालिदास), स्वप्नवासवदत्ता (भास), मृच्छकटिकम् (शुद्रक), मालतीमाधव (भवभूति), रत्नावली व नैषधकाव्य (हर्ष), दशकुमारचरित (दण्डी), हर्षचरितसार (बाणभट्ट), आदि रही हैं उन सभी में महिलाओं द्वारा पुरुषों के समान चित्रण करने का उल्लेख मिलता है जो यही सिद्ध करता है कि तत्कालीन समाज में कला का महत्व अत्यधिक था तथा जीवन से जुड़े किसी भी आवश्यक तत्व की तरह ही चित्रकला की भी उपेक्षा नहीं की जाती थी। नारी चित्रकर्त्रियाँ न केवल लोक कला में पारंगत होती थीं, अपितु उनकी चित्रकारी में दक्षता का प्रयोग राजनीति में भी किया जाता था। वस्तुतः सभी वर्गों की महिलाएं चित्रकला में दक्ष होती थीं। प्रणय प्रसंगों की सफलता में भी महिलाओं के चित्रकला नैपुण्य की अहम भूमिका रही है।

राजनीति के संबन्ध में महिलाओं का सर्वप्रथम प्रमाण ईस्वी पूर्व 400 का मिलता है और कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' को इसका आधार माना जा सकता है। कौटिल्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में कहा है कि वेश्या, दासी व अभिनेत्रियों को अन्य कलाओं के साथ चित्रकला की शिक्षा भी राज्य की ओर से दी जानी चाहिये। कौटिल्य ने राजनीति को दृष्टिगत रखकर ही उक्त ग्रन्थ लिखा है। अतः

उक्त वर्णन चित्रकला के राजनीतिक उपयोग से ही संबन्धित है। दुष्टों व विदेशी जासूसों को पकड़ने के लिए स्त्री का सभी कलाओं में पारंगत होना जरूरी था। कौटिल्य के इस कथन से यह स्पष्ट है कि महिलाओं को चित्रकला सिखाई जाती थी।

महिलाओं के लिए चित्रकला का उपयोग राजनीति तक ही सीमित नहीं था। इस कला का कला के रूप में भी उपयोग प्रचलित था। भद्र महिलायें मनोविनोद के लिए चित्रकला सीखती थीं। काश्मीर राजा के मंत्री दामोदर ने 'कुट्टनीमतम्' में कहा है कि गणिकायें आगन्तुकों को रिझाने के उद्देश्य से इस कला को सीखती थीं।

दण्डशास्त्र कौटिल्य के बाद चित्रकला का प्रामाणिक ग्रन्थ भरत का 'नाट्यशास्त्र' है जो सभी वर्गों की महिलाओं में चित्रकला के प्रचलन के प्रमाण प्रस्तुत करता है। भरत के नाट्यशास्त्र में नायिकाओं के लिए आलेख आवश्यक बताया गया है। भरत के अनुसार दिव्या, नृपपत्नी, कुस्त्री व गणिका, इन चार प्रकार की नायिकाओं को आलेख व विभिन्न कलाओं में पारंगत होना चाहिये। इसमें सभी तरह की नायिकाओं के लिए चित्रकला का विधान किया गया है। इस प्रसंग से जान पड़ता है कि महिलाओं में चित्रकला उनके जीवन का एक नियमित अंग थी। जहाँ गणिकायें पुरुषों को रिझाने के लिए इस कला को सीखती थीं वहीं भद्र महिलायें, राजकुमारियाँ व मंत्री कन्यायें भी इसे कला के रूप में सीखती थीं एवं मन बहलाने के लिये चित्र बनाया करती थीं।

सम्राट हर्ष तक भारत में शांति व्यवस्था विद्यमान रही। किसी उल्लेखनीय आक्रांता से भारत भूमि आहत नहीं हुई और शान्ति व्यवस्था के कारण कला को चरमोन्नति हुई। अजन्ता ऐलोरा की गुफाएं इस समय के कलात्मक उत्कर्ष की गौरव गाथा कह रही हैं। परन्तु हर्ष की मृत्यु के समय से लेकर मुस्लिम आक्रमणों तक अर्थात् नवीं से बारहवीं शताब्दी का काल, जो कि 'राजपूत काल' कहलाया, राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक आदि प्रत्येक दृष्टिकोण से विध्योत्तर भारत के हास का युग है। हमारा मस्तिष्क मानो अपने को पूर्णता तक पहुंचा हुआ मानकर आगे बढ़ना छोड़ देता है और 10वीं 11वीं सदी में ही यह हास सर्वतोमुख अधःपतन को पहुँच जाता है। यहीं से कोई चार सौ वर्ष के उत्तरोत्तर दुरवस्था वाले काल में चित्रकला भी दुरवस्था की ओर दुलकती चली गई है। ऐसे समय में जबकि ऊर्जस्विता एवं ओजस्विता का अभाव हो गया हो, चित्रकला इसका अपवाद कैसे हो सकती थी? फिर भी चित्रकला का स्रोत रिसता रहा। इस समय की जिस चित्रशैली ने प्रतिनिधित्व किया था वह जैन या अपभ्रंश चित्रशैली गई। यद्यपि महिलाओं की सामाजिक अवस्था शूद्रों के समकक्ष समझी जाने लगी परन्तु समाज में व्याप्त विभिन्न वर्गों की सामाजिक स्थिति के अनुसार ही महिलाओं की स्थिति भी उच्च व निम्न रही। मध्यकाल में साहित्य में चित्रकला के सन्दर्भ में बहुत लिखा गया और महिलाओं ने चित्रकला से जो तारतम्य स्थापित किया था उसके सूत्र को घोर अव्यवस्था व अशान्ति के काल मध्यकाल में भी नहीं छोड़ा।

700 ई. से लेकर 1540 ई. तक का काल भारतीय इतिहास में मध्यकाल माना गया। भारत में प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व से ही भित्तिचित्र कलाकार एवं संस्थान स्थापित होने लगे थे। इस कला शैली में उच्च कोटि के शिल्प की उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी। परन्तु कुछ शताब्दियों पश्चात् इसकी गति मन्द पड़ने लगी। आठवीं शताब्दी के आरम्भ में इस शैली के उच्चतम विकास की जो आशा की जा सकती थी वह अपूर्ण रह गई। सातवीं सदी से बौद्ध धर्म के हास और पतन के चिह्न दिखाई पड़ने लगे थे जिसका प्रभाव देश की कला तथा साहित्यिक रचनाओं व देश के सांस्कृतिक जीवन पर भी पड़ा। लगभग एक हजार वर्ष तक विदेशी आक्रान्ताओं ने देश में अशान्ति और अव्यवस्था उत्पन्न कर सुखद वातावरण को नष्ट कर दिया, जिससे भारतवासियों को कला विकास का उचित अवसर नहीं मिल सका। दूसरी ओर हिन्दू धर्म पुनःशक्ति को प्राप्त होने लगा था। देश में धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन भी आरम्भ हो गये। किन्तु कला विकास की स्वच्छंद धारा शिथिल पड़ने लगी। लगभग एक हजार वर्ष

पश्चात् पुनः कलाकृतियों के उच्चतम उदाहरण प्राप्त होते हैं। इस हजार वर्ष की मध्यकालीन अवधि में कला के उदाहरण कम उपलब्ध होते हैं और इनकी कला शैली उच्च कोटि की नहीं कही जा सकती।

राजपूत युग के अन्तिम भाग में संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में अनेक ग्रन्थ लिखे गये। अधिकांश बौद्ध व चित्रित जैन ग्रन्थ इन्हीं भाषाओं में लिखे गये। इस समय राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि प्रत्येक दृष्टिकोण से मध्यकालीन विध्योत्तर भारत का हास युग प्रारंभ हो गया। अजंता की श्रेष्ठ कृतियाँ नेपथ्य के सुपुर्द हो गयीं। परन्तु फिर भी चित्रकला लुप्तप्राय हो गई हो ऐसा नहीं है। वह अपने स्रोत खोजती रही और आश्रय पाती रही। चित्रकला अपने सृजन के लिये अधिक वस्तुओं की मांग नहीं करती जैसा कि अन्य कलाओं में होता है। कोई भी सतह जैसे पत्ता, कपड़ा, भूमि, भित्ति या घर की दीवार किसी को भी मानसिकता के अनुरूप अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया जा सकता है। यहाँ महिला चित्रकार भी कहीं पीछे नहीं रही।

मध्य युग में तथा इसके उत्तर काल में समाज में नारी का स्थान भले ही निम्नतम व शूद्रों के समान समझा जाने लगा हो परन्तु नारी ने चित्रण कर्म में अपनी भागीदारी व उत्तरदायित्व से मुंह नहीं मोड़ा। जैन धर्म के प्रचार में जैन तीर्थकरों व प्रचारकों के अतिरिक्त चित्रित ग्रन्थों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ऐसा माना जाता है कि जैन संघ में पुरुषों की अपेक्षा साधवियाँ अधिक थीं जिनके चित्रण कर्म में निपुण व संलग्न होने के उल्लेख तत्कालीन साहित्य में मिलते हैं जिनमें अनुपमा व रंगल देवी प्रमुख हैं।

इस समय के जितने भी चित्र प्राप्त हुए हैं उनमें चित्रकारों का प्रामाणिक नामोल्लेख नहीं मिलता परन्तु फिर भी कथा ग्रन्थों आदि प्रमाणों से सिद्ध होता है कि उस समय की जनता की चित्रकला में रुचि थी और संस्कृति में उसे प्रमुख स्थान प्राप्त था। केवल पेशेवर चित्रकार और चित्रकत्रियाँ ही नहीं होती थीं बल्कि राजा से प्रजा तक सभी श्रेणी के स्त्री और पुरुषों में इसका अभ्यास और प्रयोग प्रचलित था। प्रणय और परिणय में इसका विशेष उपयोग था। मध्यकाल में लिखे व चित्रित किए गये वे ग्रन्थ जिनमें महिला चित्रकारों का सन्दर्भ मिलता है ये हैं: कुवलय माला, समराइच्चकहा, कथा तरंगवती, प्रसत्रराघव, विनय पिटक, कथा सरित-सागर, सुर सुन्दरीकहा, नैषध काव्य, अभिलाषितार्थ चिन्तामणि मानसोल्लास ।

गुप्त मध्यकाल के पश्चात् चित्रकला का हास होता चला गया। पठानों के काल में तो चित्रकला लुप्तप्राय-सी हो गयी। आगे चलकर इस्लाम में उदारता आई तो मुस्लिम समाज भी कला की ओर बढ़ने लगा। चित्रकला की अजस्र धारा फिर फूट पड़ी और उसने मानव मन को सींच-सींचकर पुनः हरा-भरा बना दिया। मुगलकाल में फिर चित्रकला का रूप निखर उठा। यहाँ तक कि एक अलग ही शैली 'मुगल शैली' चल पड़ी। मुगल कलम शुद्ध भारतीय कलम के रूप में प्रकट हुई लेकिन जो नींव बाबर ने डाली और अकबर तथा शाहजहां ने उस पर महल खड़ा किया था, उसे औरंगजेब ने एक ही झटके में ढहा दिया। मुगल दरबार के कलाकार इधर-उधर भागने लगे। राजपूताना के रजवाड़ों ने इन भटके हुए कलाकारों को हाथोंहाथ उठा लिया। अब चित्रकला राजस्थान में पनपने लगी।

परन्तु यह काल राजस्थान में चित्रकला के आरम्भ का काल नहीं था। राजस्थान में चित्रकला का आरम्भ उससे कहीं पहले हो चुका था। राजस्थान को चित्रकला में सबसे महत्वपूर्ण योगदान मेवाड़ का रहा। आहड़कालीन मृद्भाण्ड चित्रावशेष तथा चौथी शताब्दी के चित्र इसके प्राचीनतम प्रमाण हैं। तिब्बती इतिहासकार लामा तारानाथ ने राजस्थान में सातवीं शताब्दी की 'यज्ञशैली' के प्रमुख 'आचार्य श्रृंगधर' का उल्लेख कर उनके केन्द्र को 'प्राचीन पश्चिमी विद्यापीठ' नाम से संबोधित किया है। यहां चित्र एवं मूर्तिकला का विकास अपनी चरम सीमा पर था।

श्रृंगधर ने मरु-प्रदेश के 7वीं शताब्दी के राजा शोल के राज्याश्रय में काफी प्रसिद्धि के दिन देखे। अजन्ता की परम्परा को वहन करने का श्रेय गुहिलवंशीय मेवाड़ के राजाओं को है जो भारतीय सभ्यता और संस्कृति की रक्षा के लिए समय-समय पर अपने

प्राणों की आहुति देते रहे हैं। दक्षिणी राजस्थान में मेदपाट (मेवाड़) वह स्थान है जो प्राचीन काल से ही सूर्यवंशी राजाओं के हाथ में रहा और गुप्त साम्राज्य के विघटन के उपरान्त भी भारतीय संस्कृति की मशाल को अपने हाथों में थामे रहा। राजस्थानी चित्रकला को जन्मभूमि राजस्थान ही है जिसका केन्द्र मेदपाट रहा है।

छठी शताब्दी से बारहवीं शताब्दी के मध्य का समय राजस्थान के इतिहास में महत्वपूर्ण समय कहा जा सकता है। आठवीं से दसवीं शताब्दी तक यह क्षेत्र गुजरात के नाम से पुकारा जाता था जिसमें मेवाड़, गुजरात और मालवा, पश्चिमी भारत के ये तीनों राज्य सम्मिलित थे। यहाँ चित्रकला की समृद्ध परम्परा रही होगी। मालवा एवं गुजरात स्थानीय सुल्तानों के अधीन थे। मेवाड़ में गुहिल राजपूतों का राज्य था। अतः इस समय जबकि चित्रकला उन्नति पर थी चित्रकला के क्षेत्र में पारस्परिक आदान-प्रदान कोई असम्भव बात नहीं थी।

विशुद्ध राजस्थानी शैली का प्रारम्भ 15वीं शती उत्तरार्द्ध से 16वीं शती के पूर्वार्द्ध के बीच 1500 ई. के लगभग माना जाना चाहिए। गुजरात और मेवाड़ में जिस समृद्ध शैली के उदय स्वरूप भारतीय चित्रकला की जो प्रसुप्त चेतना उद्भूत हुई थी, वह अपभ्रंश शैली का ही नवीन संस्करण था। भाव विधान तथा आलेखन की दृष्टि से राजस्थानी शैली यद्यपि अपने अपूर्व नये परिवेश को लेकर आई थी, किन्तु विषयवस्तु के लिए उसने अपनी पूर्ववर्ती अपभ्रंश शैली का ही आश्रय लिया। रागमाला, श्रृंगार, ऋतुवर्णन, कृष्णलीला आदि उत्कृष्ट चित्र राजस्थानी शैली की देन है। उनका स्रोत अपभ्रंश शैली ही है। राजस्थानी चित्रकला पर जैन और गुजरात शैली का प्रभाव भी रहा है।

यह सर्वविदित है कि लोक कला को छोड़कर अधिकांश राजस्थानी चित्रकला, रजवाड़ों अथवा राज्याश्रयों में पल्लवित हुई जिन्हें महलों की भित्तियों, रनवासों की दीवारों, मन्दिरों या छतरियों में ही विकसित होने का अवसर मिला।

यहां के चित्रकारों में न केवल पुरुष चित्रकार रहे बल्कि महिलायें भी राजस्थान की इस अमूल्य धरोहर के निर्माण में भागीदार रहीं। परन्तु सामाजिक प्रतिवन्धों के कारण वे इस कला पर अपनी पहचान उतनी स्पष्टता से प्रदर्शित नहीं कर सकीं जितनी कि पुरुष चित्रकार ।

लोककला की चर्चा की जाए तो लोक कला का तो सिन्धु ही महिलाओं ने किया है । लोककला हमारे जीवन का अन्तरंग अंग है और वह दृश्य रूप में मानवमन की अभिव्यक्ति है। लोककला जहाँ एक ओर अन्तःकरण की प्रथम अभिव्यक्ति है वहाँ दूसरी ओर यह कला उपयोगी भी है। लोककला सामान्य जन या ग्रामवासियों की कला का प्रतिनिधित्व करती है।

लोककला के वटवृक्ष की जड़ों का गहरापन मोहनजोदड़ो, हड़प्पाकालीन सभ्यता तक है। सिंधुघाटी सभ्यताकालीन भग्नावशेष तत्कालीन समाज के मार्तृसत्तात्मक होने के संकेत देते हैं जहां के भग्न मृद्भाण्डों और नारी जीवन से जुड़ी हुई अन्य दैनिक उपयोग की वस्तुओं पर चित्रांकित आकार मिले हैं। आज की राजस्थानी आदिवासी और ग्रामीण क्षेत्रों की निवासी महिलाओं द्वारा झोपड़ियों की गारे की दीवारों पर, दैनिक उपयोग की वस्तुओं पर चित्रित सुरक्षित सजे-सवरे चित्र देखे जा सकते हैं और पीढ़ी-दर-पीढ़ी नारी द्वारा आगामी संततियों को ये चित्र हस्तान्तरित करने का सबल प्रमाण देते हैं। संभवतः नारी के मातृत्व की अतिव्यस्तता के कारण समाज का मार्तृसत्तात्मक स्वरूप बदल गया हो परन्तु सौंदर्य से उसका लगाव, मंडन कर्म की मशाल का उसके द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरण आज भी अनवरत है।

वास्तविकता तो यह है कि हर नारी हर समय अपने हृदय में उठ रहे भावों को शब्दों का स्वरूप नहीं दे सकती। अतः अतिव्यस्त जीवन को जीते हुए अपने भीतर के गूढ़ भावों को उसने जब तक मौका मिला जहाँ-तहाँ अंकित कर अभिव्यक्ति दे डाली, जिन्हें दूढ़ने हमें शहर की कला वीथिकाओं में सहेज कर रखी गई चित्र मालिकाओं में देखने की आवश्यकता नहीं, अपितु उसके

दर्शन हमें किसी भी गांव के घर-आंगन में नित नवीन रूपाकारों को ग्रहण करते मांडणों में, महिलाओं की हथेलियों में, अंगों के गोदनों में तथा सिन्दूर से सजे भाल पर हो सकते हैं।

राजस्थान में लोककला को माण्डणों, मेंहदी, सांझी, चित्रांकन, रंगोली, मृण्मयकला, थापे पाने व 'फड़' चित्रांकन आदि के रूप में पहचाना जा सकता है। लोककला के ये विविध रूप वस्तुतः नारी जीवन में बसी परम्परा, आस्था एवं स्फूर्त चेतना के जीवन्त परिदृश्य हैं। राजस्थान के विस्तृत ग्रामीण अंचलों में लोक संस्कृति का यह रूप-स्वरूप गोबर, पीली मिट्टी से लिपे-पुते झोपड़ों, टापड़ों और घरों पर हल्दी, मेंहदी, कुंकुम, गेरू, खड़िया एवं सूखे-गीले रंगों के माध्यम से रेखांकित किया जाता है। यह रेखांकन हमारी आंचलिकता की विविधता और विशिष्टता का प्रतिनिधित्व करता है। गांव के चित्रित आकारों से युक्त मुहल्लों में एक चित्रवीथिका का आभास कराती यह समृद्ध परम्परा किसी अनुष्ठान, मंगलभावना, लोकविश्वास, लोकचेतना और जीवन की निरन्तरता का प्रतिनिधित्व करती प्रतीत होती है। साधारण से दिखाई देने वाले कुछ सीमित रंगों से अंकित इन असाधारण माण्डणों में नारी के हुलसित मन के उद्गारों की अभिव्यक्ति मिलती है।

लोक कला के बाद यदि समसामयिक कला के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी की चर्चा की जाए तो आदिकाल से आधुनिक काल तक नारी ने चित्रकला की दोनों धाराओं के सिरों को अपने कोमल हाथों से थामे रखा। कला का एक सिरा लोककला है तो इसका अपर सिरा उस कला को कहा जा सकता है जो हर युग की राजनैतिक, सामाजिक व धार्मिक परिस्थितियों के अनुसार अपना स्वरूप परिवर्तित करती रहती है।

आहड़ सभ्यता की मृणभाण्ड चित्रकारी, महाभारतकालीन ऊषा की सखो चित्रलेखा के स्मृति चित्र, मौर्यकाल की गुप्तचरियों के चित्र और प्राचीन काल से आज तक के सम्पूर्ण राजनीतिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य और नारी चित्रकार द्वारा किये गये सृजन पर दृष्टिपात करने पर यह तथ्य उभरता है कि जैसे-जैसे राजनीतिक परिस्थितियां बदलती रही हैं नारी की सामाजिक स्थिति में अंतर आता रहा है। कभी वह साम्राज्ञी बनी, कभी देवी की भांति पूजी गई तो कभी शूद्र की भांति तिरस्कृत हुई। ऐसे में यह चित्रण कर्म ही था जिसके सहारे महिलाएं स्वयं - को कुंठा से परे एक सहज अभिव्यक्ति के रूप में बचा ले गईं। आज के तेजी से बदलते इस युग 3 में जहां नारी के लिए जन्म के साथ ही तनाव और त्रस्तता विस्तार पाने लगती है, दो चार युवा प्रौढ़ाएँ अपने व्यक्तित्व और परिस्थितियों के अनुसार अपने मन के उद्गारों को चित्रण के माध्यम से अभिव्यक्त करती रहती हैं। इस प्रकार एक ओर तो वह नारी अपने व्यक्तित्व का विकास करती हुई समाज के समक्ष तनाव से हटकर स्वस्थ मानसिकता को प्रस्तुत करने में सफल होती है तो दूसरी ओर सामाजिक विषयों से युक्त चित्राकृतियां देकर अपने युग को अपना अमर- प्रतिनिधि दे प्रदेश ही नहीं, समस्त मानव जाति के प्रति अपने महत्वपूर्ण कर्तव्य का निर्वहन भी करती है।

भारत की प्रमुख समसामयिक महिला चित्रकारों में कुछ ये हैं:- देवयानी, अमृता शेरगिल, अन्जली इला मैनन, गोगी सरोजपाल, माधवी पारेख, नलिनी मालिनी, मुखर्जी, मीरा मुखर्जी, अपर्णा कौर, अनुपम सूद, वसुंधरा तिवाड़ी, निलिमा शेख, वीरवाला भावसार, प्रभा शाह, हेमा उपाध्याय से लेकर अनेक अनेक नामों को संदर्भित किया जा सकता है, जिन्होंने देश ही नहीं वरन विदेश में भी अपनी कला का परचम लहराया है और आज कला जगत में महिलाओं का योगदान उत्तरोत्तर पहचान बनाता जा रहा है।

---

**संदर्भ:-**

1. वाचस्पति गेरोला-भारतीय चित्रकला का इतिहास, चौखंबा मेरठ, 1983 पृष्ठ संख्या 150।
2. महेंद्र भानावत-संस्कृति के रंग, भारतीय लोक कला मंडल उदयपुर 1979 पृ.सं. 50
3. प्रेमचंद्र सुमन-कुवलय माला-एक सांस्कृतिक अध्ययन, उदयपुर 1924, पृ.सं. ३२
4. विमल चंद्र पांडे, प्राचीन भारत का राजनीतिक व सांस्कृतिक इतिहास, इलाहाबाद, 1988 पृष्ठ संख्या 75
5. राय कृष्ण दास भारत की चित्रकला, चतुर्थ संस्करण, लीडर प्रेस इलाहाबाद, विक्रम संवत् 2023, पृष्ठ संख्या 35
6. वीणा विद्यार्थी एवं सुरेंद्र सिंह चौहान, हमारी विरासत, संस्कृति विभाग, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ संख्या 64.
7. सुषमा सिंह, लोक कला, सुकृति प्रकाशन, हरियाणा, 2004, पृष्ठ संख्या 46
8. देवीलाल सांभर, लोक कला की पृष्ठभूमि, आकृति जयपुर, 1967, पृष्ठ संख्या 8